डोगरी साहित्य में हास्य और व्यंग्य

—सत्यपाल शास्त्री

हास्य और व्यंग्य साहित्य की अत्यन्त जीवन्त तथा महत्वपूर्ण विधाएं हैं। दूसरे शब्दों में हास्य तथा व्यंग्य साहित्य रूपी उद्यान के मुस्कराते तथा सुगन्धि भरे पुष्प हैं। जिस साहित्य में इन विधाओं का अभाव हो उसमें न सर्वांगता आ पाती है और न ही एक विशेष प्रकार का सौन्दर्य तथा सरसता।

संस्कृत नाटकों में विदूषक की कल्पना के पीछे उनमें हास्य तथा व्यंग्य का समावेश करना ही था। काव्य शास्त्रकारों ने इन विधाओं की उपादेयता को दृष्टिगत करते ही इन्हें इतना ऊंचा स्थान दिया था कि इन्हें साहित्य के लिए अपरिहार्य सिद्ध कर दिया। अर्थात् हास्य को अद्भुत रस का स्थायी भाव और व्यंग्य को तीन शक्तियों—अभिधा, लक्षणा तथा व्यञ्जना में व्यञ्जना का रूप मानकर साहित्य में स्थान दिया। यद्यपि हास्य और व्यंग्य साहित्य में एक दूसरे के पूरक हैं तो भी काव्य शास्त्रकारों ने इन दोनों का अपना-अपना स्वतन्त्र अस्तित्व माना है। हास्य अधिकांशत: मनोरञ्जन का माध्यम ही बनता है जबकि व्यंग्य मनोरञ्जन के साथ-साथ समाज की कुरीतियों तथा मनुष्य की निजी त्रुटियों पर करारी चोट करके सुधार का मार्ग भी प्रशस्त करता है।

यद्यपि डोगरी साहित्य में हिन्दी और उर्दू साहित्य के समान हास्य और व्यंग्य की इतनी रचनाएं नहीं हो पाई हैं तो भी इसके अत्यल्प आयाम में जो कुछ भी हास्य और व्यंग्य के नाम पर लिखा गया है उसका मूल्यांकन करने की आवश्यकता को अनदेखा नहीं किया जा सकता।

डोगरी कविता में हास्य का प्रयोग सबसे पहले दीनूभाई पन्त की रचना

'गुतलू' के माध्यम से हुआ। इसकी रचना से डोगरी जगत में एक प्रकार से तहलका मच गया था। उन दिनों प्राय: हर पाठक की ज़ुबान पर 'गुतलू' ही चढ़ा हुआ था। परन्तु आज जबकि डोगरी साहित्य एक लम्बा सफर तय कर चुका है और उसमें एक स्तरीय निखार आ रहा है तो 'गुतलू' के कथ्य में हमें हास्य-व्यंग्य कहीं-कहीं अतिरञ्जित तथा विसंगतियों से भरा नज़र आता है। प्रारम्भ में 'गुतलू' का कवि हमें जिस यथार्थ के धरातल पर खड़ा कर अपने कथ्य से परिचित कराता है वह आगे चलकर हास्य-व्यंग्य का बाना पहन कर अपने स्तर से गिरता हुआ प्रतीत होता है। यद्यपि तेजां और उसका साथी प्रारम्भ में पाठक की सहानुभूति के पात्र हैं तथापि बाद में वे-मात्र उसके हास्य के आलम्बन बन जाते हैं। ये पद्यांश इस तर्क के प्रमाण हैं :—

'दमें बैठे जाई तला, पक्की होई एह् सलाह्
अड़ेया इक्क कम्म करचै, इत्थां शहर नसी चलचै
उत्थें मिन्त मजूरी करगे, खीसे पैसें कन्ने भरगे
चिट्टे टल्ले लाई चलगे, खुल्ले सैर-सपाटे करगे
बैरी वाला चन्नू ठौकर, रेया पंजै म्हीने नौकर
आंदी ठैया गेदी झारी, नेचा सुच्चा टूटी भारी
सिरै पर छत्ते रखी फिरदा, बड़ा हस्सी-हस्सी मिलदा
इथ्वां भुक्खा मरदा गेया, उत्थें स्वास फिरी पे।
शैहर पहलो पहल गे।

× × ×

दिक्खी झांकियै दुकान, छड़े कप्पड़े दे थान
कन्ने रेड़ू बजदा सुनया, दौंएं होई गे राह्न
ओ किश काठा दा संदूख, मानूं बिच्चा करलान
अंदर नेयै जाई दिक्खी, इक्क ऊऐ नेई होर
टल्ले मीमां दे अंगरेजी, देसी साह्ब खड़ोता कोल
तेजां समझया एबी मूरत, दिक्खै ध्रोई-ध्रोई सूरत
हत्थ मुंहै ने छुत्राया, साहबैं खिच्ची चांटा लाया
आपूं नुक्क तुआरी मीमां, इक्कै देह् देह् देह्
शैहर पहलो पहल गे।"

'गुतलू' का कवि एक ओर तो देहाती लोगों की गरीबी पर व्यंग्य करके पाठक की प्रशंसा का पात्र बनता है : उनके प्रति सहानुभूति अर्जित करता है, जब कि दूसरी ओर उन्हीं गरीबों की विवशता, बेबसी, भोलेपन तथा निरक्षरता को अपने उपहास के लिए माध्यम के रूप में चुनता है।

कवि हरदत्त शास्त्री की कविता 'दालती दा धन्दा' अदालत की कारकरदगिओं पर एक करारा व्यंग्य है। जिस न्यायालय से हम न्याय की अपेक्षा करते हैं यदि वही रिश्वत लेकर उल्टे को सीधा और सीधे को उल्टा कर दे तो प्रार्थी किसके पास अपनी फरियाद करे। ऐसी अवस्था में उसे भारी निराशा का सामना करना पड़ता है। उस समय उसे भगवान् से भी उपेक्षा ही मिलती है :—

'कुसै इक कुसै दो, कुसै घा कुसै भो,
कुसै गन्ने, कुसै रौह्, कुसै गितें सण धोचदी।
इनें फरमासें फंगताल करी दित्ता भिगी,
ठौगरें तोड़ी बी मेरी सूंक नईं सनोचदी।'

कवि कंजूसों पर एक चुभता हुआ व्यंग्य करते हुए अपनी कविता 'खज्जल खुआरी' में कहता है कि कंजूस ब्रह्मा की सृष्टि की निकृष्टतम रचना है। ऐसे लोगों को पैसा खर्च करते समय अत्यन्त कष्ट होता है। इन कंजूसों की सन्तान भी पंज कल्याण होती है। अर्थात उनकी सारी सम्पत्ति ऐसी सन्तान द्वारा बरबाद हो जाती है :—

"पैसा खर्चना मौत भला फी सुधरैं की सन्तान,
इनें कंजूसें दे घर जमदे, पुत्तर पंज कल्याण।"

कवि रघुनाथ सिंह सम्याल 'फैशन' कविता में फैशन के कारण दुगर समाज में आए आशातीत परिवर्तन पर तीखा व्यंग्य करता है। कवि कहता है कि फैशन के कारण हमारे पारिवारिक जीवन का सम्मान गिरता जा रहा है। हम पश्चिम की अन्धाधुन्ध नकल करके अपनी परम्परा को भूलते जा रहे हैं :—

'नाथ' जी, करदेओ गल्लां भलोकियां,
जोकियां इंदियां गाह्कियां नईं।,

इसी कविता में आगे चलकर कवि व्यंग्य के साथ हास्य का पुट देकर कहता

है कि आजकल के फैशन परस्त नवयुवक अपनी पत्नियों के पैरों पर माथा रगड़ते हैं :—

"जागतें सामने बासते पांदे ओ,
लेडी दे पैरें पर मत्था घसांदे ओ,
पुत्तरें गी कैत बब्ब बनांदे ओ,
रन्नां बी लगदिआं चाचियां नईं।"

डोगरी के प्रसिद्ध कवि परमानन्द अलमस्त ने अपनी कविता 'सुरग नेईं जान हुन्दा' में समाज में प्रचलित पाखण्डवाद और धार्मिक आण्डम्बरों पर तीखी व्यंग्यात्मक चोट की है। कवि कहता है कि जब तक सच्चा ज्ञान न हो तब तक मुक्ति प्राप्त करना असम्भव है। बाह्याडम्बर से मनुष्य का कुछ नहीं बनता है। जितना चाहो पत्थर, सोना, चान्दी आदि की मूर्तियां बनाकर धन की पूजा करो, मन की मैल धोए बिना ज्ञान की प्राप्ति नितान्त असम्भव है—

बट्टें सुन्ने चान्दी दियां मूरतां बनानां ऐं,
उन्दे अग्गें मत्थे घस्सैं मिन्नतां मनानां ऐं।
धूफें गी धुखानां ऐं, जोतां बी जगानां ऐं,
फल मठआइयां ते पूरियां-कचौरियां।
खीरें-मालपूड़ें दे नवेद बी लोआनां ऐं,
आपूं गै घड़ना ऐं, घाट हत्थैं मूरखा।
उस्सै घाटा घड़े कोला आपूं गै तरानां ऐं,
आपूं जाएं खड़ी खड्डा, अस अन्नै खूह पाए दे।
सुरग नईं जान हुन्दा पित्तल खड़काए दे॥

कवि तारा स्मैलपुरी अपनी व्यंग्यात्मक कविता 'बावे' में समाज का ध्यान साधु समाज की ओर आकृष्ट करता है। यह एक वास्तविकता है कि हमारे देश के साधु समाज में असंख्य बुराइयां घुस आई हैं, जिनके कारण साधु हमारे समाज के लिए वरदान नहीं अपितु आभिशाप बनते जा रहे हैं। अधिकांश साधु अपना पाखण्ड फैला कर भोले-भाले लोगों को ठगते हैं। कवि अपने चुभते हुए व्यंग्य के साथ कहता है कि ये साधु अपने आप को समाज के सामने ऐसे प्रस्तुत करते हैं कि मानो ये ही स्वर्ग तथा नरक का परमिट बांटने वाले हैं। इन

साधुओं ने न देश की स्वतन्त्रता के संघर्ष में हाथ बटाया और न ही स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद पंचवर्षीय योजना आदि प्रगति-कार्यों के लिए बनाई गई योजनाओं की सफलता में किसी प्रकार का सहयोग दिया है। इसके विपरीत इन्होंने लोगों का गुमराह करके उनसे धन अवश्य लूटा है :—

'जां जादी दे युद्धै दै बिच, कोई बावा जिन्न सीस कटाया।
देसै दी रख्या ताईं दस्सो, इक बी बावा कम्म जो आया।
× × ×
मिट्ठा मंगदे, थिन्दा मंगदे, मन-मरजी दे सुआद बनांदे।
कौम भाएं सुत्ती दी सेई जा,—इनें ते अपनी धामें कन्ने'',

कवि रमैलपुरी अपनी एक अन्य रचना—'ए केह्ड़े साह्ब न लंगी दे' में समाज के उस शोषक व्यापारी वर्ग की जघन्य चेष्टाओं पर तीखा व्यंग्य करता है जो दिन रात ब्लैक, मंहगाई, मिलावट आदि का बाजार गर्म किए हुए है। उन्हें यदि किसी बात की चिन्ता है तो वह है किसी भी ढंग से धनोपार्जन करना—

''कोई बड्डे मुट्टे लाले न, जो ढिड्डे बिच्चा काले न।
जिनें कोट्ठे भरी टकाए दे, चीजें दे ठाले लाए दे।
कोई मैंह्ग कराने 'आले न' जां दून बधाने आले न
जड़े जैंट बने दे जंगै दे,
ए केह्ड़े साहब न लंगै दे।''

डोगरी गद्य साहित्य में हास्य-व्यंग्य का प्रयोग करने वालों में प्रो० लक्ष्मी नारायण विशिष्ट स्थान रखते हैं। उनकी रचना 'कण्डियारी दे फुल्ल' इसी प्रकार के निबन्धों का संग्रह है। उनकी व्यंग्य-शैली नितान्त सुघड़ तथा स्वाभाविक है। इनमें न कहीं फूहड़पन है और न ही कृत्रिमता, इनकी भाषा में सादगी, तीखापन तथा सरलता है। 'कण्डियारी दे फुल्ल' में संग्रहीत निबन्धों में 'छड़ें दा कोठा', 'रबारा', 'मि० बोर,' 'कलाजंग' 'भाग रेखा' तथा 'शाह' उत्तम निबन्ध हैं। 'छड़ें दा कोठा' में निबन्धकार ने अविवाहित और फिर घर से दूर रहने वाले युवकों की असमर्थ मन: स्थिति का बड़ा ही सूक्ष्म विश्लेषण किया है। ऐसे युवक कितने ही शरीफ क्यों न हों लोग इन्हें सन्देह की नजर से ही देखते हैं। प्रतीत होता है कि लेखक ने निजी अनुभूति की अभिव्यक्ति इस निबन्ध के माध्यम

से की है। इसीलिए निबन्ध में एक युवक कहता है—'सुनेदा हा छड़ें दा तइज्ज मान भावें किन्ना होऐ उनेंगी कोई मकान नईं दिन्दा। लोक डरदे न जे ओ उन्दियां-सवारियां ब्हालिऐ कुतै फुर्र... नि होई जान। छड़ें दी इस मुश्कला दे वारे च मी इक मित्रै ने बड़ा गै डराए दा हा। जियां आखो दूए थार जन्दे गै छड़े दा चलान होई जाग, ते जिआं जे ब्याह जिन्दगी दी गड्डी दा लसेंस ऐ। ऊआं मेरे मित्रा दी ब्याह आली रेखा ने चमत्कार नेहा दस्सेआ, इस करी ओ जेका घर झांकदे उत्थुआं गै इयै सनोचदा 'टब्बर ऐ जां नईं'? टब्बर आखर टब्बर ऐ, बनाई ऐ बनदा ऐ; कोई शरबत नईं ऐ जेड़ा झट बनी जा। एटम बम्ब बनाने आला लेखा टब्बर बनाने कोला प्हैलें केई गल्लां सोचनियां पौन्दियां न।''

इन पंक्तियों में कितना स्वाभाविक व्यंग्य तथ अकृत्रिम हास्य है, पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं। 'रबारा' निबन्ध में हास्य और व्यंग्य की एक अपूर्व छटा है। निबन्ध में शायद ही कोई वाक्य होगा जो हास्य तथा व्यंग्य से अछूता है। निबन्धकार ने रबारे का धन्धा करने वाले व्यक्तियों के चरित्र का विश्लेषण बड़े ही कलात्मक ढंग से किया है। प्रतीत होता है कि लेखक को ऐसे व्यक्तियों के स्वभाव तथा चरित्र की गहन अनुभूति है। इन पंक्तियों से इस तथ्य की पुष्टि हो जाती है—'जे कुत्ता दरबाजे ने खैरे तां झट्ट बाहरा गी खिट्ट दिन्देओ जे रबारा आया लबदा ऐ। जे तुसेंगी बाहर चलने लेई आखो तां तुस टाली दिन्देओ। सोचदे, खबरै पिछूं रबारा उठी आवे।''—— रबारा के नी करी सकदा? ओ चाह तां बतोए दा सज्जर ते सज्जर बतोए दा करी दस्सै। थ्वाड़ीएं अखिएं च नेई सलाई पा जे ओ जो चा सो लब्बे।'. जियां कलाकार अपनी कला आसते गै जींदा ऐ, ईयां गे रबारा बी रबारगी करीए अपना झस्स पूरा करदा ऐ।''

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'रबारा' निबन्ध में निबन्धकार ने हास्य रस से अनुप्राणित व्यंग्य के अनोखे चित्र उपस्थित किए हैं। 'भागरेखा' निबन्ध में उन ठगी का धन्धा करने वालों पर तीखा व्यंग्य है, जिनका काम है अपनी गुरडम लीला रचाकर लोगों को अपने चुगंल में फंसा कर उनके हाथ देखना तथा उन्हें सब्ज बाग दिखाकर उनसे धन बटोरना। इस निबन्ध में उत्तम पुरुष में अपनी व्यथा का वर्णन करने वाला युवक भी ऐसे ही साधु वेषधारी एक ठग के झांसे में आ जाता है और सौ रुपए से हाथ धो बैठता है। हाथ देखने वाला धूर्त युवक

का हाथ देखकर कहता है कि उसके हाथों की रेखाओं के अनुसार उसे दबा खजाना मिलेगा। बस फिर क्या? युवक कुदाली लेकर अपने घर की दीवार तोड़ने लग पड़ता है ताकि उसे खज़ाना प्राप्त हो जाए ..."खजाने दा पता मकाने दी बारली कन्दा एठ लग्गा। गेन्ती चुक्की ते आपूं गे जटोई पे। कच्ची कन्द ही, बापू उन्दे ढाकदे तोड़ी अधी बछाई सुट्टी। जे महात्मा होर मेरा नां दस्सी सकदे न, साड़े अन्दरले बोजे च पेदा रुपे आला नोट दस्सी सकदे न तां खजाना की नेंई दस्सी सकदे।' ... इन्ने चिरा च पुलमा आले वी आई पुज्जे। आखन लगे—'दिनें दपहरीं गे सन्नां मारन लगे ओ।' 'अपना घर ऐ जे मर्जी करचे' असें भड़तोआ दित्ता पर उन्दीयां सूईयां अखियां ते लोहे दे कड़े दिखीए अपने तगड़े ग्रह बिन्द ढल्ले जन पेई गे, तां ओ बड़े ताने ने बोले—"सुनाओ थ्वाड़े जानीजान स्वामी ओर कुत्थे न, कुत्थे छपेले दा ए उन्हेंगी? सच-सच दस्सयो नैंतां (रूल ल्वारिए) अस बी अपना जानीजान कन्ने गे रखने आं (प०27-28) केंई बारी दलील आऊंदी ऐ जे अस बी कुते दूए थार जाइयै हस्त-विद्या दा कम्म शुरू करी ओड़चे।" (प०28)

'मि० बोर' निबंध में निबंधकार ने उन लोगों पर अपने व्यंग्य की करारी चोट की है जो समाज में बिन बुलाये मेहमान बन कर हर काम में अपनी टांग अड़ाते रहते हैं। ऐसे लोग हर काम में अपने चौधरीपन का दिखावा करते हैं। इसीलिए लोग इनसे बोरियत अनुभव करते हैं। ऐसे लोगों के प्रति लेखक की यह व्यंग्योक्ति देखने योग्य है—'जे तुस गल्ल टालने दी कोशश करो तां 'अच्छा पहले मेरी सुनो, आऊं आखादा हा' आखीए भी अपनी गे गल्ल मारन लगी पौंगन।'...—'थ्वाड़ी हार दा उन्दे कोल अमोघ शस्त्र ऐ। इन्दी सुसाइटी च हमेशां तबीयत खराब गे उन्दी ए, बशरते कि तुस अपना दमाग घर रखी ए जाओ। कुसै ने ठीक आखेया जे उन्दीयां गल्लां उस झरने दी कल-कल आला लेखा न जेदी बाज मिट्ठी बशक उन्दी ऐ पर जेदा कोई मतलब नेईं।" (प०106)

'होटले आला पंत' निबंध में निबंधकार ने एक ढाबे के मालिक का व्यंग्यात्मक चित्र खींचा है। उसकी दुकान पर गालिआं ही गालिआं हैं। दाल-सब्जी चाहे मिले न मिले गालिआं तो अवश्य मिल ही जाती हैं। वास्तव में ऐसा तन्दूर मालिक अपने पूरे समाज का प्रतिनिधि है। उसके व्यक्तित्व का व्यंग्यात्मक चित्रण इन पंक्तिओं में देखने योग्य है:—"पतला शरीर लम्बा कद्द, लत्तें दे

आसै-पासै तैह्मत इआं जियां बालीबालै दे डण्डे च नैट लपटोऐ दा होऐ। जेलै पन्त होर चुल्ली कश बौंदे न तां दूरा इंआं लबदा ऐ जे त्रै आदमी सिरा ने सिर जोड़िए बैठे दे न।" (प०13) पंत होरें मुच्छां वी बड्डियां रखी दिआं न, जिनें गी ओ महेशां मरोड़ चाढ़दे रौंह्दे न, पर बुढ़ापे दिआं मुच्छां नमीं बट्टी दी रस्सी आला लेखा झट्ट खुट्टिऐ उन्दे मुआं पर इंआं खिल्लरी जन्दियां न जिआं ढिल्ली जूड़ी दियां तीलां।" (प०14)

'बसस्टाप' निबंध में निबंधकार का जहां 'सिटी बस' के प्रबन्धकों के कुप्रबन्ध पर व्यंग्य है वहां उन लोगों पर भी करारी चोट है जो बसों पर चढ़ने के लिए झगड़े करते हैं तथा बसों को भीतर से गन्दा भी करते हैं।

'शाह जी' निबन्ध में निबन्धकार ने उस व्यापारी वर्ग पर चुभता व्यंग्य किया है, जो पैसा कमाने की धुन में अपना खाना-पीना और आराम भूल कर अपने पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन की भी उपेक्षा कर देता है। दिन-रात रुपया कमाने की चिन्ता में उसका जीवन पशुओं से भी बदतर हो जाता है। इन पंक्तियों में ऐसे वर्ग के प्रतिनिधि एक शाह जी के बारे में निबन्धकार का हास्य भरा व्यंग्य बड़ा ही प्रशंसनीय है—'टट्टू बी रातीं राम करदा ऐ, पर शाह ओर ओले यी लदोए दे रौंदे न, फलाने ने कराया नी दित्ता ते फलाने ने बकाया, फलाने गी माल नी भेजया ते फलाने मुकदमे लेई गवाही नी थोए।"

निबन्धकार लक्ष्मीनारायण का अगला निबन्ध 'क्षमा करना धन्नबाद' हमारे सामने समाजी शिष्टचार का व्यंग्यात्मक विश्लेषण उपस्थित करता है। 'क्षमा करना' और 'धन्यवाद' आधुनिक सभ्यता में शिष्टाचार के नितान्त अनिवार्य अंग हैं। इनके बिना शिष्टाचार खोखला है, परन्तु कुछ लोग इनका इतना दुरुपयोग करने लगते हैं कि जिससे एक ऊब-सी होने लगती है। ऐसे लोग पक्के अवसरवादी तथा चापलूस होते हैं। निबन्धकार ऐसे लोगों पर अपने व्यंग्य-बाण बरसाते हैं। 'टरूनंद' निबन्ध में निबन्धकार उन व्यक्तियों पर अपने अकृत्रिम व्यंग्य की चोट करता है जो हर बात में अपनी शेखी दिखाते हैं। ऐसे लोग 'टरें' यानी गप्पें हांक कर सच को झूठ तथा झूठ को सच सिद्ध करने के लिए बनावटी बातें बनाकर कहते हैं।

'कलाजंग' निबन्ध लेखक की सूक्ष्म तथा पैनी सूझ-बूझ का दिग्दर्शन कराता है। स्वयं अविवाहित होते हुए भी निबन्धकार ने इस निबन्ध में एक पारिवारिक

जीवन का जिस मनोवैज्ञानिक पद्धति से व्यंग्यात्मक चित्र खींचा है वह अपना उपमान स्वयं है। निबन्ध में एक परिवार में सास और पुत्र वधू की पारस्परिक कलह किस प्रकार चरम सीमा पर पहुंचती है ...उसका एक उदाहरण देखते ही बनता है—"तूं ते कोई टूना कीते दा ए"। जनकी देई अपने जिम्मे ए दोष लगदे दिक्खी लाल-पीली ओई गेई ते बोली—'लाड़ी आऊं मां आं गैर नेईं। जादू-जड़िएं ताईं मी अपना पुत्र गे रेई गेदा हा'। 'परतख गी परमान नी लोड़दा' लाड़ी ने आखया। कदें मरद मानूं बी ईयां मुहां च डूठा पाई ए बौंदा ए' पर धर्मपुत्र निषपखता दी नीती उपर डटे दे हे ... जे मिगी दिक्खी नेहा सुखाना तां पुत्र कैसी ब्याया हा, बन्नी लैना हा नां उस्सी बी चाबिएं आला लेखा अपने लड़े ने। ओले ते तूई गशां पैई-पैई जन्दीयां हां।... फिटे मुंह . दुर लानत, ऊन दस्स'... बगैरह।...

'जक्को-तक्के' निबन्ध में उन मनुष्यों पर तीखा व्यंग्य है जो हर बात में ढुल-मुल नीति से काम लेते हैं। ऐसे लोग किसी निर्णय पर नहीं पहुंच पाते। सदा शंकालु ही बने रहते हैं। इनमें आत्मविश्वास का भी अभाव होता है। स्वयं तो किसी परिणाम पर नहीं पहुंच पाते, परन्तु दूसरा उन्हें कोई सम्मति देवे तो उस का भी निरादर कर देते हैं। बाजार जाकर एक टके की वस्तु खरीदने के लिए दिन भर भटकते रहेंगे। यदि कुछ खरीद कर घर ले आने पर किसी प्रकार का संदेह हो गया तो लौटाने के लिए चल पड़ेंगे। लेखक द्वारा ऐसे लोगों का मनो-वैज्ञानिक विश्लेषण स्वाभाविक भी है और तथ्य पूर्ण भी।

उपर्युक्त सर्वेक्षण से ज्ञात होता है कि प्रो० लक्ष्मीनारायण का डोगरी गद्य में हास्य-व्यंग्य का प्रयोग करने वालों में प्रमुख स्थान है। उनके हास्य-व्यंग्य उन्हीं की आपबीती या स्वानुभूति का विवरण हैं। काश! वह विदेश न गए होते तो अब तक उन्होंने हास्य-व्यंग्य की अन्य रचनाएं देकर डोगरी निबन्ध साहित्य के भण्डार को कितना समृद्ध किया होता!

प्रो० मदन मोहन शर्मा के निबन्ध—'जनानी अजें गुलाम ए' का शीर्षक ही व्यंग्य-पूर्ण है। लेखक अपने इस निबन्ध में प्रतिपादित करता है कि स्त्री प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़ रही है, तथा वह घर की चारदीवारी के भीतर रह कर भी अपने चातुर्य तथा सौन्दर्य आदि गुणों से पुरुष को अपने अधीन कर लेती है।

लेखक उन स्त्रियों पर व्यंग्य करता है जो स्वभाव की खूंखार हैं तथा जो अपने अदम्य अहं के बलबूते पर टालस्टाय जैसे विश्व प्रसिद्ध लेखक को भी अपनी उंगलिओं के इशारों पर नचा सकती हैं। इसीलिए निबन्धकार टालस्टाय की मन: स्थिति का चित्रण अपने चुभते व्यंग्य से यों व्यक्त करता है—'जनानी बारै मेरे बचार, तालस्ताय होरैं अपने चुपासै बड़ी घाबरी दी नज़रा कन्ने इस लेई दिक्खदे होई आक्खेआ जे कुनै कोई जनानी उन्दी गल्ल-बात नेईं सुना करदी होयै, 'जनानी बारै मेरे बचार बड़े स्पष्ट न। पर अपने ओ बचार में उस्सै ले दस्संग जिसले मेरी इक लत्त कबरा च होग।"

"इक लत्त कबरा च? भला ओ की महात्मा जी?"

"ओ इस लेई", बुड्ढे तालस्ताय ने अपनी चिट्टी दाड़ी पर हत्थ फेरदे होई आक्खेआ,—'जे में जनानी बारे जे किश बी आक्खनां ऐ उसी आक्खियै फटा-फट अपनी दूई लत्त बी कबरा अन्दर बाड़ी सकां।"

राम लाल, शर्मा के निबन्ध-'सच्च पुच्छो तां औं अज्ज सोहागन होइयां' में घर के बजट को व्यवस्थित करके आर्थिक बचत करने के विषय में पति-पत्नी का व्यंग्यात्मक वार्तालाप हास्य रस से भरा हुआ है। इसे पढ़ कर पाठक की रुचि एक विशेष आह्लाद की स्थिति में आ जाती है। चौधरी जी ने अपनी अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण पगड़ी मीरजादे कौ दे दी जिसे जब उसने घर जाकर खोला तो वह केवल धागों का पुंज मात्र रह गई थी। कपड़े के नाम पर उसका केवल अन्तिम छोर ही बच गया था, जिसकी लपेट में पगड़ी का शेष कंकाल छुपा हुआ था। क्रोध से जले-भुने तथा ग्लानि से पीड़ित मीरजादे और चौधरी का वार्तालाप हमारे सामने हास्य-व्यंग्य का सुन्दर नमूना प्रस्तुत करता है—'चौधरी जी, इन्न सारी रात नेईं मिगी सौन दित्ता, जप गै करदा रेआ—'ओंनम:, ओंनम:।' तां जे चौधरी होर बोले—'बासूदेवाय नेहा आखदा ओहदे कन्ने।" तां मीर जादा होर बोले—'एह चौधरी जी बासू देव हुंदे कोला दूर पहलें दा ऐ, अदूं बासूदेव होर जम्मे दे गै नईं हे।',

विश्वनाथ खजूरिया के निबन्ध 'घमाई फिरे इनें लीडरें उप्परा' में आदि से अन्त तक हम उन लीडरों पर एक चुभता हुआ व्यंग्य देखते हैं जो अवसरवादी तथा दल-बदलू हैं तथा जो व्यावहारिक रूप में तो पंगु हैं परन्तु दिखावे के लिये सब कुछ करते हैं। ऐसे नेता लोगों को गुमराह करने तथा मूर्ख बनाने के लिए हर प्रकार

की चालाकी का प्रयोग करते हैं। लेखक की ये पंक्तियां इस निबन्ध का केन्द्र बिन्दु हैं :—ए ठीक ऐ जे लीडर साहब मदारी बाला लेखा ढाके-बंगाले दी लकड़ी छोआइयै अपनी मुट्ठी बिच्चा नौकरी दा आर्डर नेईं कड्ढी सकदे, पर अगले गी लारें दी डोरी कन्ने लक्का फाह लाई रक्खने च ओ के खट्टी करदे न इस बारे च अपना अंदाजा ए ऐ, जे मदारी जां मजमे-बाज बांगर लीडरें गी बी घर के, ते घरा बाहर के मजमा लाई रखने दा चशका होंदा ऐ जेकर ओ लोकें गी दो टुक जबाव देन लगन तां फी उंदी बैठका च इन्नी रौनक किआं लग्गी रवै ते उंदी लीडरी कियां चमकै।"

'कविता इक मसीबत' शीर्षक निबन्ध में लेखक योगेन्द्र सराफ का कविता के क्षेत्र में अत्याधुनिकता का प्रयोग करने वालों पर करारा व्यंग्य है।

पुलिस थानेदार की कविता लिखाने की खबत सभी के लिए सिर दर्द बन जाती है क्योंकि दीवान जी हर समय श्रोता की ताक में रहते हैं और जो ट्रैफिक नियमों का उल्लंघन करता है उसके सामने यह शर्त रखते हैं कि या थाने चलो या उनकी कविता सुनो। परिणामत: दीवान जी से सभी घबराने लगते हैं। उन्हें देखते ही उनसे पिण्ड छुड़ाना चाहते हैं—'इसदे बाद दीवान जी शकारें दी खोज च रौहन्दे। उनेईं दिक्खियै मोटरें-कारें आले दौड़ी जंदे, हट्टी आले भित्त बन्द करी लैंदे। हुन दवान होरेंगी दिखदेगे डरिये भेठा होई जंदे हे ओ अकसर जुंदे शा ओ पैहलें थर-थर कंबदे हे। अजुबा गै होआ हा।" इस प्रकार के आधुनिक कवियों पर लेखक का तीखा व्यंग्य इन पंक्तियों में भी देखा जा सकता है :—"में इस नतीजे पर पुज्जेआं जे सरकार सब्बै निक्के-बड्डे कवियें गी फड़ियै ट्रैफक पुलसै च भरती करी दे तां कदें बी ऐक्सीडेंट नेईं होन। की जे इक बारी उंदी कवतें दा शकार होने परैंत लोक बी गैर जरूरी बोरियत कोला बची जांगन।"

ओम गोस्वामी की कहानी 'रसोली' में भावुकता प्रधान युवकों पर कठोर व्यंग्य है। जो युवक भावना के प्रवाह में वह कर अपनी सामर्थ्य तथा योग्यता का मूल्यांकन किये बिना अपना ध्येय निश्चित कर लेते हैं, उन्हें अन्तत: कठिन परिस्थितिओं का सामना करना पड़ता है। कहानी का नायक इसी प्रकार के युवा वर्ग का प्रतिनिधि है। उसने एक बार राम लीला में जटायु की भूमिका निभाई थी, जिसकी दर्शकों ने भूरि-भूरि की प्रशंसा से प्रोत्साहित होकर उसके भीतर

अभिनेता बनने की धुन जाग पड़ा थी जो उसे कभी भी चैन नहीं लेने देती थी। कहानी की ये पंक्तियां इस तथ्य को व्यंग्य पूर्ण ढंग से स्पष्ट करती हैं !-'सराहना ने उन्दे अन्दर इक एक्टर दा वुत्त खडेरी दित्ता हा। दसमीं चढ़दे-चढ़दे उनें मनै च पक्का करी ले दा हा जे ए बुत्त गै उन्दा आदर्श होग। किल्लें कन्ने कमरे दियां कन्दां कानियां होई गेइयां हियां। बम्बई ते हाली वुड दे एक्टरें-एक्ट्रैसें दे कलण्डर कमरे दी सफेदी गी अपने पिच्छे छपैली बैठे। कतावें दे थार फिल्मी रसाले औन लगे। घरा आले आस्ते-'बलार्टिग-पेपर' इक हौय्आ जन बनी गेया हा जिसदा नां लेइयै ओ रोज रपेया, आन्ना मंगी लैंदे, ते मजे कन्ने कादर-यार ते वारसशाह दे किस्से आनियै भित्तें गी सौंगल देइयै अपने गी कमरे च डक्की उड़दे। अखबारें दे फिल्मी अडीशनें च छपेदे फिल्मी ड्रामे बी ओ खूब-मन-चित्त लाइयै पढ़दे ते हीरो दे डॉयलाग रट्टियै बंद कमरे च'मानो-एक्टिंग' करदे। घरा आले आखदे-'इम्त्यान सिरै पर ऐ, बक्त थोड़ा ऐ।'

नरसिंह देव जमवाल की कहानी 'शान्ति' में हास्य और व्यंग्य दोनों हैं। लेखक अपनी कुशल लेखनी के माध्यम से हमारे सामने ऐसे पारिवारिक जीवन का चित्रण करता है जिसका आपसी कलह के कारण सन्तुलन बिगड़ चुका है। वहां न शांति है और न ही कोई खुशी। हर समय पति और पत्नी के मध्य मन-मुटाव जहां पारिवारिक सुख शांति के लिए घातक है वहां कोमल-हृदय बच्चों के निर्माण में भी बाधक बन जाता है। कभी-कभी इतनी भयंकर स्थिति आ जाती है कि पत्नी रूठ कर मायके चली जाती है जब कि पति की अवस्था पहले से भी कठिनतम स्थिति में पहुंच जाती है। घर की व्यवस्था, खान-पान आदि सब अस्त-व्यस्त हो जाता है। कहानी की इन पंक्तिओं में कहानीकार पति की अवस्था का चित्रण व्यंग्यात्मक ढंग से करता है :—

'हून चाह के बनानी ऐ सही गै बनान्ने आं। में अग्ग बाली, आटा गुद्दा ते इक पतीले च दुद्ध गरम होने गी रक्खी उड़ेआ। नेओड़ा के बनाचै, किश बी समझ नि ही आवा दी। इक दो फाईल घर आन्दी दी ही, जिन्दा कम कल दफ्तर नि सा मुक्केया ते ओ अज साब दै पेश करनिया हियां, पर घर आईयै ते उनें गी दिक्खने दी बेहल गै नईं ही लग्गी ...मैंटे-मैंटे पर रोह चढ़ना ते मेरे सभा' च गै शामल होई गेदा हा ब' बजारै दा परतोइयै जे किश दिक्खेया उसी दिक्खियै हर कुसै गी रोह चढ़ना कोई बड़ी गल्ल नई ही। दरवाजा ते मैं बंद करी

गे दा हा ब' दुआरी दा चेता गै नि हा रेहा। अग्ग चरोकने दी सिली गे दी ही। दुद्ध ऐ गे किन्ना हा ब उबी बिल्ली नैं साम्बी लेदा हा, आटा किश ते कमरे दी चूका-चूका चूहें पजाई ओड़े दा हा, रैंदे खैन्देगी कां लग्गी पेदे हे।"

स्व० नरेन्द्र खजूरिया की कहानी 'बक्खरियां-बक्खरियां जीभां' में उन लोगों पर तीखा व्यंग्य है जिनकी कथनी और करनी में बड़ा अन्तर है। एक कालेज का प्रिन्सिपल मास्टर गौरी दत्त की तबदीली इसलिए करवा देता है कि उसने उसकी लड़की को पढ़ाना बन्द कर दिया था उसकी परिस्थितिआं उसे ऐसा करने के लिए विवश करती हैं। उसकी पत्नी बीमार है। अत: उसके इलाज के लिए उसे रुपया चाहिए। इसीलिए वह प्रिन्सिपल की लड़की को मुफ्त पढ़ाने के काम को छोड़कर उसी समय में ट्यूशन पढ़ा कर रुपया कमाना चाहता है।

प्रिन्सिपल चिढ़कर इसी बात पर मास्टर गौरीदत्त पर नाराज होकर उसकी तबदीली करवा देता है यद्यपि प्रिन्सिपल उसकी तबदीली से बेहद खुश है, तो भी मास्टर गौरीदत्त को दी जाने वाली विदाई की चाय पार्टी में प्रिन्सिपल अपने लच्छेदार भाषण में मास्टर गौरी दत्त की योग्यता तथा निश्छलता की प्रशंसा के पुल बांधता है। इससे प्रिन्सिपल की अलग-अलग जिह्बाओं अर्थात् दोहरे चरित्र का भण्डा-फोड़ हो जाता है। नीचे उद्धृत सन्दर्भों से प्रिन्सिपल के दो रंगे चरित्र का स्वत: उद्घाटन हो जाता है—'मिस्टर गौरी दत्त, में दिक्खा करना, हर गल्लै च अपनी लत्त फसानी तुन्दी आदत बनदी जा करदी ऐ। तुस उमरी च बड्डे ओ इसकरी में जे किश नईं बर्दाश्त करना हा ओ बी कीता। पर इसगी शायद तुस मेरी कमजोरी मिथदे रेह ओ। हून ए गल्ल नईं होग।' ... 'इस पार्टी च वी प्रिंसिपल ने इक हल्का-फुल्का भाषन दित्ता- मेरी सहयोगी श्री गौरी दत्त जी साढ़े कन्नै बड़ा थोड़ा चिर रेह। पर इस थोड़े समें च इनें अपनी योग्यता ते मेहनत कन्ने स्कूलै दे स्टाफ ते विद्यार्थिएं दे मन मोही लैते, एह इक सच्चे अर्थें च उस्ताद न।'

भगवत्प्रसाद साठे की कहानी 'दालभत्त' में लेखक ने स्वप्न की कल्पना के द्वारा रामचन्द्र शुक्ल, जयशंकर प्रसाद, डॉ० द्विवेदी और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के वार्तालाप के माध्यम से भारतीय लेखकों की दुखद आर्थिक अवस्था का व्यंग्य शैली में मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है।

जितेन्द्र शर्मा की लघु नाटिका 'अंतिम इच्छया' में एक मरते हुए बूढ़े और उसकी पत्नी के वार्तालाप में हास्य भी है और व्यंग्य भी। उदाहरण के लिए ये

पंक्तियां उद्धृत हैं—"बुड्डी—जागते दी के सनां' चौं जागतें चा, ब्राऊं दा सिर नईं फट्टा। बुड्डा—एदा मतलब चौथे दा फट्टी गेआ ऐ। कैसी पलेचदार गल्ल कीती ऐ।" व्यंग्य एकांकी लिखने में जितेन्द्र शर्मा का डोगरी में कोई सानी नहीं है।

ऊपर दिए विविध उदाहरणों से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि डोगरी साहित्य में हास्य और व्यंग्य के प्रयोग निरन्तर हो रहे हैं। यद्यपि कई रचनाओं के हास्य और व्यंग्य में वह मौलिकता अभी तक नहीं आ पाई है जो हम अन्य भाषाओं के समकालीन साहित्य में देखते हैं, तो भी हम यह भी अस्वीकार नहीं कर सकते कि कुछ रचनाओं में इन विधाओं की वह परिपक्वावस्था नहीं है जो अन्य समृद्ध-भाषाओं के साहित्य में है। डोगरी साहित्य में जो प्रयोग हो रहे हैं वे प्राय: अभी भी अपनी बाल्यावस्था में ही हैं। हां, उनमें धीरे-धीरे निखार तथा परिपक्वता आ रही है।

वस्तुत: साहित्य में हास्य और व्यंग्य का सृजन करने के लिए गहन मौलिक चिन्तन, पैनी सूझ-बूझ तथा अपने परिवेश का गम्भीर अध्ययन नितान्त अनिवार्य है। अन्यथा हास्य-व्यंग्य में निरा फूहड़पन तथा कृत्रिमता ही नज़र आएगी जो—साहित्य में सौन्दर्य के स्थान पर भद्दापन ही भर देगी।

———